समयसार, १५६ गाथा का भावार्थ। **आत्मा का मोक्ष होता है...** मोक्ष अर्थात् परम आनन्द का लाभ या अनन्त गुण की पूर्ण पर्याय का लाभ आत्मा को होता है। **इसलिए उसका कारण भी आत्मस्वभावी ही होना चाहिए।** मोक्ष का कारण; मोक्ष जब आत्मा का होता है, **इसलिए उसका कारण भी आत्मस्वभावी ही होना चाहिए।** क्योंकि आत्मा के जो अनन्त गुण हैं, वे सब शुद्ध हैं। कोई गुण विकाररूप हो, ऐसा कोई गुण नहीं है।

इसलिए उसके अनन्त गुण जो स्वभाव हैं, वह उसका-मोक्ष का वह कारण है। अनन्त गुण का स्वभाव, उसका जो आश्रय, उसका जो परिणमन; उस आत्मा को मोक्ष होता है तो आत्मा का स्वभाव मोक्ष का वह कारण है। दया, दान, व्रत, व्यवहाररत्नत्रय इन सबका निषेध है। यहाँ (इन्हें) पुद्गलस्वभावी कहा है क्योंकि आत्मा का यह कोई गुण नहीं है। पर्याय में होता है, वह निमित्त के आधीन (होता है, इसलिए होता है)। इसलिए **उसका कारण भी आत्मस्वभावी ही होना चाहिए।** आहाहा!

जो अन्य द्रव्य के स्वभाववाला है, उससे आत्मा का मोक्ष कैसे हो सकता है? यह पुण्य और पाप का भाव कोई आत्मा का स्वभाव नहीं है। अनन्त गुण में कोई गुण नहीं है। पर्याय में है, इसलिए वह पर्याय में पर के आधीन हुआ होने से... आहाहा! अन्य द्रव्य के स्वभाववाला होने से **उससे आत्मा का मोक्ष कैसे हो सकता है?** आहाहा!

शुभ कर्म पुद्गलस्वभाववाले हैं... दया, दान, व्रत, भक्ति, नामस्मरण, चिन्तवन आदि सब वह शुभभाव पुद्गलस्वभावी है; आत्मस्वभावी नहीं। आत्मा के अनन्त-अनन्त गुण हैं, परन्तु सब शुद्ध हैं और शुद्धरूप से परिणमे, वह उसका स्वभाव है। इसलिए पर्याय में / अवस्था में जो कर्म के निमित्त के लक्ष्य से होते हैं, वे सब पुद्गल के स्वभाव गिनकर मोक्ष के कारण में उनका कारण नहीं है। आहाहा!

अन्य द्रव्य के स्वभाववाला है, उससे आत्मा का मोक्ष कैसे हो सकता है? शुभ कर्म पुद्गलस्वभाववाले हैं... इस अपेक्षा से। उसका त्रिकाली पुद्गल जो है, पर्याय में उसके आश्रय से होता है। कोई भी गुण आत्मा का नहीं है-कोई भी स्वभाव नहीं है कि विकार हो। आहाहा! इसलिए यह दया, दान, व्रत, भक्ति (का) होना, (वह) पुद्गलस्वभावी है। जीवस्वभावी त्रिकाल नहीं, इसलिए पुद्गलस्वभावी है। आहाहा! ऐसा है। लोगों को (ख्याल नहीं)। होता है इसकी पर्याय में, परन्तु पर्याय में होते-होते इसका ऐसा कोई गुण नहीं है। गुण, वह विकाररूप परिणमे, ऐसा कोई गुण नहीं है। आहाहा! इस कारण से दया, दान, व्रत, भक्ति आदि अन्य द्रव्यस्वभावी है। शाश्वत् प्रभु का स्वभाव... आहाहा! वह तो पूर्ण अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द आदि पूर्ण गुण का स्वभाव, अनन्त शक्ति का स्वभाव शुद्ध है और उसकी अनन्तानन्त शक्ति का किसी शक्ति का गुण या स्वभाव विकाररूप हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! दया, दान के

विकल्परूप परिणमे, ऐसा कोई गुण नहीं है। आहाहा! इसलिए उसे अन्य द्रव्यस्वभाव (कहा है)।

इसलिए उनके भवन से परमार्थ आत्मा का भवन नहीं बन सकता;.. आहाहा! वांचन, श्रवण, मनन, चिन्तवन सब विकल्प / राग है। आहा! वह राग पुद्गलस्वभावी है; जीवस्वभावी नहीं। भगवान तो पूर्ण अनन्त गुणों का पिण्ड, वह तो पवित्रस्वभाव है। वह पवित्र स्वभावी भगवान, पवित्र पूर्ण मोक्ष का कारण है परन्तु विकार का कारण वह नहीं है। आहाहा! विकार का कारण तो पुद्गल है, वह निमित्त है और अध्धर से पर्याय में उसके लक्ष्य से होता है, इसलिए उसे पुद्गलस्वभावी कहा है। आहाहा! व्रत, नियम और तप, वह सब पुद्गलस्वभावी है, ऐसा कहा है।

वह **शुभ कर्म..** कर्म अर्थात् कार्य। **पुद्गलस्वभाववाले हैं, इसलिए उनके भवन से..** उनके होने से **परमार्थ आत्मा का भवन नहीं बन सकता;..** परमपदार्थ ऐसा भगवान आत्मा, उसका होना उससे (शुभकर्म से) नहीं हो सकता। **इसलिए वे आत्मा के मोक्ष के कारण नहीं होते।** आहाहा! इसलिए व्रत, तप, भक्ति, पूजा, दान, स्मरण, चिन्तवन इत्यादि वे सब कोई आत्मा के मोक्ष का कारण नहीं होते।

ज्ञान आत्मस्वभावी है.. ज्ञान, दर्शन, आनन्द, वह आत्मा का स्वभाव है। उस आत्मस्वभावी ज्ञान से **उसके भवन से..** (अर्थात्) उसके परिणमन से। शुद्ध पूर्ण अनन्त गुण के आश्रय से जो परिणमन होता है, वह आत्मा का भवन होता है। इसलिए उसके स्वभाव से (परिणमित होने से), ज्ञानस्वभावी होने से उसका भवन—होने से। **आत्मा का भवन..** अर्थात् आत्मा का पूर्ण स्वरूप परिणमता है। **अत: वह आत्मा के मोक्ष का कारण होता है।** आहाहा!

कल तो भक्ति में आया नहीं था? 'प्रभु मेरे तुम सब बातें पूरा'.. आहा! तुझमें क्या कमी है? भाई! आहाहा! 'प्रभु मेरे तुम सब बातें पूरा, पर की आस कहाँ करे प्रीतम।' प्रभु! प्रीतम कहकर कहा, हे प्रेम करनेवाले भगवान! तू प्रीतम है, प्रभु! आहाहा! अन्य की आश कहाँ करे प्रीतम? 'कई बाते तू अधूरा?' किस भाव से, किस गुण से, किस शक्ति से तू अधूरा कहाँ है? आहाहा!

एक-एक गुण जो जीवत्वशक्ति आदि है, उसमें अनन्त गुण का रूप है, ऐसा एक-

एक गुण परिपूर्ण, प्रभुत्व आदि से भरपूर परिपूर्ण, ऐसे अनन्त गुण का रूप प्रभु तेरा है, वह कहाँ अधूरा और विरुद्ध है। आहाहा! वह तो परिपूर्ण प्रभु है, उस परिपूर्ण प्रभु के आश्रय से जो भवन होता है अर्थात् दशा होती है, वह मोक्ष का कारण है। आहाहा!

आत्मा के मोक्ष का कारण होता है। इस प्रकार ज्ञान ही.. आत्मा का स्वभाव जो ज्ञानादि है, उसका परिणमन ही **वास्तविक मोक्षहेतु है।** उसका परिणमन (कहा)। ज्ञान अर्थात् ज्ञान का परिणमन, आत्मा का परिणमन। त्रिकाली परिपूर्ण प्रभु का परिणमन (होता है), वही मोक्ष का कारण / हेतु है। आहाहा! वास्तविक तो वह मोक्ष का कारण है। विकार, वह पुद्गलस्वभावी होने से, चैतन्य के कोई गुणस्वभावी नहीं होने से वह पुद्गलस्वभावी (है और) वह आत्मस्वभाव का—मोक्ष का कारण नहीं होता। आहाहा! ऐसा कठिन पड़ता है।

चिन्तवन, मनन, विकल्प आदि (पुद्गलस्वभावी हैं)। आहाहा! प्रभु तो परिपूर्ण भगवान है। गुण से परिपूर्ण पड़ा है न, प्रभु! उसमें विकल्प उठाना, वह उसकी जाति नहीं है। आहाहा! वह पुद्गलस्वभावी जाति, कुजाति है। उससे आत्मा का मोक्ष और परिपूर्ण (दशा का) कारण परिपूर्ण स्वभाव की शक्ति की व्यक्तता का कारण वह नहीं होता। आहाहा!

कलश–१०६

अब इसी अर्थ के कलशरूप दो श्लोक कहते हैं:–

(अनुष्टुप्)

वृत्तं ज्ञानस्वभावेन ज्ञानस्य भवनं सदा।
एकद्रव्यस्वभावत्वान्मोक्षहेतुस्तदेव तत्।।१०६।।

श्लोकार्थ : [एकद्रव्यस्वभावत्वात्] ज्ञान एकद्रव्यस्वभावी (–जीवस्वभावी–) होने से [ज्ञानस्वभावेन] ज्ञान के स्वभाव से [सदा] सदा [ज्ञानस्य भवनं वृत्तं] ज्ञान का भवन बनता है; [तत्] इसलिए [तद् एव मोक्षहेतुः] ज्ञान ही मोक्ष का कारण है।।१०६।।

श्लोक - १०६ पर प्रवचन

अब इसी अर्थ के कलशरूप दो श्लोक कहते हैं:-

वृत्तं ज्ञानस्वभावेन ज्ञानस्य भवनं सदा।
एकद्रव्यस्वभावत्वान्मोक्षहेतुस्तदेव तत् ।।१०६।।

आहाहा! यह १०६ कलश है न! इसमें उस स्वरूपाचरण (के) छह बोल लिखे हैं। इसमें - **'ज्ञानस्य भवनं वृत्तं'** नीचे है न दूसरा? उसके अर्थ में (लिखे हैं) ज्ञान का भवन अर्थात् कि स्वरूपाचरण। अर्थात् कि स्वरूप जो शुद्धचैतन्य है, उसका परिणमन / आचरण (होना) वही एक मोक्ष का कारण है। आहाहा!

'एकद्रव्यस्वभावत्वात्' ज्ञानादि अनन्त गुण जो शुद्ध हैं, वह एक द्रव्यस्वभावी है। एक ही द्रव्यस्वभावी है, दूसरे द्रव्य का वहाँ अवलम्बन, निमित्त है ही नहीं। आहाहा! **एकद्रव्यस्वभावी..** पूर्ण प्रभु, अनन्त गुण से प्रभु पूर्ण है, ऐसा एक द्रव्यस्वभाव। आहाहा! **'स्वभावत्वात्'** है न? एक द्रव्यस्वभाव होने से, ऐसा। एक द्रव्य का वह स्वभाव होने से। आहाहा!

अनन्त-अनन्त गुण जो पवित्र प्रभु, उसका एक द्रव्यस्वभावी अर्थात् उन गुणों का परिणमन शुद्ध हुआ, वह एक द्रव्यस्वभावी है। आहाहा! **ज्ञान..** अर्थात् गुण। शान्ति, वीतराग आनन्द इत्यादि। **एकद्रव्यस्वभावी..** एक आत्मद्रव्यस्वभावी वह वस्तु है। उसका परिणमन। **'ज्ञानस्वभावेन'** आहाहा! ऐसे **'एकद्रव्यस्वभावत्वात्'** एक द्रव्य के स्वभाव होने से। परिपूर्ण पवित्र एक द्रव्यस्वभाव ऐसा जो होने से **'ज्ञानस्वभावेन'** उस शुद्ध का परिणमन होना। आहाहा! शुभाशुभ का परिणमन (होना), वह अशुद्ध परिणमन है (और वह) पुद्गलस्वभावी कहा गया है। आहाहा! हिंसा, झूठ, चोरी, विषय-वासना, वह भी पुद्गल-स्वभावी है।

अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त का अन्त नहीं, इतने गुण! परन्तु कोई एक गुण विकृतरूप से परिणमे, ऐसा कोई गुण उसमें नहीं है। आहाहा! इन गुण का गुण, अनन्त.. अनन्त.. अनन्त गुणों का गुण विकाररूप होना, वह गुण का गुण नहीं है। आहाहा!

वह गुण का गुण अनन्त पवित्र जो गुणों की संख्या, उस गुण का गुण पवित्ररूप से परिणमना, वह गुण का गुण है। आहाहा! अरे! इसे अपनी महिमा की खबर नहीं होती। अपने माहात्म्य की खबर नहीं होती कि यह चैतन्यतत्त्व क्या है? करोड़ों की कीमत का हीरा कहलाता है, उसके पासा होते हैं। यह तो अनन्त पासावाला, पवित्र पासावाला पवित्र तत्त्व प्रभु (है, इसमें) अनन्त गुण के पासा भरे हैं। आहाहा! ऐसा एक द्रव्यस्वभाव, जिसमें पर का लक्ष्य और पर्याय में पर का आश्रय है, वह इसमें नहीं है। आहाहा!

यहाँ इन तीन लाइनों में पूरा किया है। कलश (टीका) में पूरा पृष्ठ भरा है! छह बार स्वरूपाचरण, स्वरूपाचरण ऐसे शब्द हैं। आहाहा! यह दया, दान, व्रत, भक्ति, तपादि स्वरूपाचरण नहीं है। आहाहा! यह तो विभाव आचरण है, इसलिए यह पुद्गलस्वभाव है।

भगवान आत्मा, अनन्त गुण से परिपूर्ण स्वभाव से भरपूर प्रभु के गुण से गुण का परिणमित होना। उसके गुण का गुण शुद्ध निर्विकारी आनन्द, ज्ञान, शान्ति, स्वच्छता और प्रभुता, ऐसी निर्मल पर्यायरूप होना, वह गुण का गुण है। आहाहा! इस गुण ने क्या गुण किया? आहाहा! यह अनन्त-अनन्त गुण हैं, इनने क्या गुण किया? कि इनका आदर करने से शुद्ध परिणमन किया, यह गुण किया। आहाहा! लोग कहते हैं न, भाई! इसके संग से तुझे क्या लाभ हुआ? ऐसे प्रभु! भगवान! तू परिपूर्ण है, प्रभु! आहाहा! (तुझमें) विकार तो नहीं परन्तु अपूर्णता नहीं। आहाहा! ऐसा परिपूर्ण स्वभावी अनन्त गुण से भरपूर प्रभु, उसका गुण तो शुद्धरूप से, पवित्ररूप से, आनन्दरूप से, शान्तिरूप से, स्वच्छतारूप से, ईश्वरतारूप से होना। अनन्त गुण का गुणरूप परिणमन होना, वह उसका गुण और वह मोक्ष का कारण है। आहाहा!

मुमुक्षु : मन्द कषाय करते-करते शान्ति हो जाए।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं होता। मन्द कषाय है, (वह) जहर है। जहर करते-करते अमृत होगा? लहसुन खाते-खाते कस्तूरी की डकार आवे तो शुभभाव करते-करते शुद्धता हो। आहाहा!

यहाँ तो एकद्रव्यस्वभावी वस्तु अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, परिपूर्ण प्रभु का परिणमन, वह गुण का परिणमन (मोक्ष का कारण कहा है)। आहा! अनन्त-अनन्त गुणों का वर्तमान

पर्याय में परिणमन, वह एकद्रव्यस्वभावी होने से, एक स्वद्रव्य का स्वभाव, वह परिणमन हुआ, वह मोक्ष का कारण है। राग की मन्दता लाख, करोड़, अनन्त करे, अनन्त बार की है, (तथापि वह मोक्ष का कारण नहीं है।) आहाहा!

मुमुक्षु : विशुद्धिलब्धि कही है, विशुद्धिलब्धि प्रगट हो, पश्चात् शुद्ध होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : लब्धि-बब्दि बाद में, यहाँ तो सीधा स्वभाव (प्रगट करे)। लब्धि सुनता है, सुना है। देशनालब्धि, उससे नहीं होता क्योंकि वह तो परलक्ष्य से सुना। स्वलक्ष्य से सुनने में जाए, तब तो परलक्ष्य छूट जाता है। (वह) हो, परन्तु उससे नहीं होता। आहाहा! यह तो उसमें-भावपाहुड़ में पहले आया नहीं था? कि मोक्षमार्ग होता है तो अन्दर के निर्मल भाव से, परन्तु द्रव्यलिंग नग्न और पंच महाव्रत, ऐसा द्रव्य साथ में होता ही है। भाव और द्रव्य दोनों आये थे। परन्तु वह द्रव्य (लिंग) मोक्ष का कारण (नहीं है), तथापि वह निमित्तरूप से होता अवश्य है। आहाहा!

पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, अन्दर तत्पर होकर जब.. आहाहा! परिणमित होता है... आहाहा! तब वहाँ अन्दर आनन्द की लहर उठती है। उसके साथ अनन्त गुणों का परिणमन उठता है, वह एक द्रव्यस्वभावी होने से, वह एक द्रव्यस्वभाव ऐसा जो मोक्ष; मोक्ष आत्मा का स्वभाव है, इसलिए आत्मा के द्रव्यस्वभाव से उसका मोक्ष होता है। आहाहा! उसका संग करने से क्या लाभ हुआ? पूर्णानन्द के नाथ का संग करने से क्या हुआ? वह असंग है, उसका संग करने से (क्या लाभ हुआ)? आहाहा! अन्दर वह असंग वस्तु है। जिसको राग का भी संग नहीं। वस्तु त्रिकाल निरावरण असंग शुद्ध (पड़ी है)। आहाहा! उसका संग करने से क्या हुआ? कि उसका संग करने से मोक्ष का कारण (प्रगट) हुआ। आहाहा! क्योंकि उसका संग पूर्ण करने से मोक्ष होता है, तो शुरुआत का संग करने से मोक्ष का कारण होता है। आहाहा! अब ऐसी बातें लोगों को सुनने को मिलती नहीं, बाहर में समय मिलता नहीं। अरे रे! ऐसा अवसर-समय मिला।

इस एक श्लोक में छह बार स्वरूपाचरणचारित्र डाला है। छह बार! स्वरूपाचरण.. स्वरूपाचरण। राग वह करूपाचरण-पुद्गलाचरण है। आहाहा! **'वृत्तं'**, **'वृत्तं'** का अर्थ वहाँ यह किया है। स्वद्रव्य आचरण। है न? **ज्ञानस्य ज्ञान के स्वभाव से सदा.. सदा** अर्थात् हमेशा, त्रिकाल-तीनों काल में। आहाहा! **'ज्ञानस्य भवनं वृत्तं'** ज्ञान का होना-

स्वरूपाचरण, द्रव्यस्वरूप का आचरण, द्रव्यस्वभाव का वर्तन, द्रव्यस्वभाव का परिणमन, वह मोक्ष का कारण होता है। आहाहा!

कल तो भक्ति में आया था, नहीं? 'प्रभु मेरे तुम सब बातें पूरा' 'प्रभु मेरे तुम सब बातें पूरा, पर की आश कहाँ करे प्रीतम' मेरे नाथ! प्रेम का नाथ! सागर! 'पर की आश' राग और पर की आश तू क्या करता है। 'पर की आश कहाँ करे प्रीतम, कई बातें तू अधूरा' किस बात से तू अधूरा है? आहाहा! तू किस भाव से अधूरा है कि पर की आशा रखता है? कि इस दया से, राग से, पुण्य से, (धर्म) होगा। अरे! प्रभु! यह तू क्या करता है? तुझमें कहाँ अपूर्णता है और कहाँ पूरा नहीं भरा है? आहाहा! यह पूरा होगा, वह छलकेगा। आहाहा!

अनन्त-अनन्त गुण का सागर प्रभु, ऐसा जो उसका **'वृत्तं'** अर्थात् स्वरूपाचरण.. वह इस **'ज्ञानस्य भवनं वृत्तं'** आत्मा का होना, वह चारित्र है। **'वृत्तं'** अर्थात् चारित्र। व्रत, तप और भक्ति वह कोई चारित्र नहीं है। वह तो अचारित्र है। आहाहा! **'ज्ञानस्य'** आत्मा के परिपूर्ण स्वभाव का पर्याय में **'भवनं'** अर्थात् सत् का जो सत्व है, (उसका परिणमन)। सत् ऐसा जो प्रभु, उसका जो सत्व अनन्त गुण है, उसका पर्याय में परिणमित होना.. आहाहा! तीनों एक जाति हो जाए। आहाहा!

द्रव्य पदार्थ प्रभु! जिसे चैतन्य का आश्रय है.. आहाहा! चैतन्य ऐसे गुण का जिसे आश्रय है, उसका आश्रय है.. आहाहा! ऐसा स्वस्वभावी भगवान... आहाहा! एक साधारण बात में ललचा जाए, लोभी हो जाए और प्रसन्न हो, उसे ऐसा मेरा नाथ प्रभु पूर्ण स्वरूप है, उसे उसका प्रेम कैसे आवे? आहाहा! साधारण कोई पाँच-पच्चीस लाख पैसा (रुपये) हुए, लड़के दो-पाँच कमावे, कर्मी हुए, कर्मी! कर्मी हुए और कुछ स्त्री ठीक हुई और स्त्री पीहर में से पाँच-पच्चीस लाख लेकर आयी, वहाँ तो ऐसा मानो... आहाहा! (हो जाता है)। क्या है प्रभु तुझे? आहाहा! इस दुःख के स्थान में तुझे प्रसन्नता! इस आनन्द के नाथ की तुझे प्रसन्नता नहीं आती, नाथ! आहाहा!

अतीन्द्रिय अनन्त गुण का सागर प्रभु, आहाहा! जिसमें अनन्त गुणों के एक-एक गुण का अनन्तरूप, ऐसा छलाछल, लबालब परिपूर्ण प्रभु भगवान है न, नाथ! आहाहा! प्रभु! उसके सन्मुख देख न! उसका संग कर न! इस राग और विकार के संग से तो संसार में दुःखी है, प्रभु! वर्तमान दुःखी है, ऐसा आया है, कल आया था। पैसेवाले आदि

करोड़पति वर्तमान दुःखी हैं। आहाहा! क्योंकि उनका लक्ष्य पर के ऊपर-धूल के ऊपर जाता है। आहाहा! या पन्द्रह-पच्चीस हजार मासिक वेतन हो तो मानो ओहोहो! मानो हम बढ़ गये! धूल में! धूल में बढ़ गये। आहाहा!

चैतन्यस्वभाव... **'ज्ञानस्य भवनं वृत्तं'** यह (आया), इतना अर्थ यहाँ चलता है। यह भगवान पूर्णस्वरूप जो है, उसका **'वृत्तं'**, वृत्तं अर्थात् उसका आचरण। समझ में आया? उसे **'वृत्तं'** कहा, परन्तु स्वरूप का आचरण, वह निश्चय व्रत है। आहाहा! अरे! आत्मा का होना - **'भवनं'** सत्व प्रभु जो है, सत् का सत्व। प्रभु सत् है, चिदानन्द वह गुणों का पूर्ण स्वरूप है, वह सत्व है, उस सत्व का परिणमन होना... आहाहा! अर्थात् उस सत्व का नहीं परन्तु सत् का परिणमन होना। आहाहा! उस सत् का सत्व है, उसका-सत् का परिणमन, सत्वरूप से पर्याय में होना। यह चिद्विलास में आता है। गुण का परिणमन नहीं, द्रव्य का परिणमन है। गुण का परिणमन (अर्थात्) एक गुण भिन्न (परिणमित होता है), ऐसा नहीं है, पूरे द्रव्य का परिणमन। गुण का परिणमन, वह द्रव्य का परिणमन नहीं है, परन्तु द्रव्य का परिणमन वह गुण का परिणमन है। चिद्विलास में आता है। आहाहा! अब ऐसी बातें कहीं सुनी न हो, सब दूसरा प्रकार। मार्ग बहुत अलग है, भाई! आहाहा!

कहते हैं कि आत्मा जो स्वभाव से परिपूर्ण है, उस स्वभाव का होना, अर्थात् उस स्वरूप का आचरण होना, उस स्वरूप का पर्याय में आचरण होना, उसे यहाँ व्रत कहने में आता है और वह व्रत, मोक्ष का कारण है। आहाहा! है या नहीं अन्दर?

आत्म-भवनं (अर्थात्) आत्मा का पर्याय में होना, वह व्रत, वह चारित्र है। आहाहा! भगवान परिपूर्ण अनन्त गुण से भरपूर है, ऐसा जो द्रव्यस्वभाव, वह स्वभाव स्वयं-द्रव्य पूरा पर्याय में परिणमता है। आहाहा! शुद्ध शुद्धरूप, शुद्ध-उपयोगरूप से परिणमन हुआ, उसे यहाँ चारित्र कहा है। आहाहा! यह बात तो पड़ी रही और बाहर के यह व्रत और यह तप और यह अतिचार (किये), रस त्याग किया और अमुक त्याग किया और धूल। परन्तु आत्मरस त्याग दिया, उसका क्या करना?

आत्मरस! भगवान अनन्त गुण का रस! उसकी तो दृष्टि छोड़ दी और राग के रस के रस में पड़ा है, प्रभु! वह तो मिथ्या आचरण है। भले इसने (दूसरे) रस छोड़ दिये हों, एक ही रस खाता हो, पाँच रस छोड़कर अमुक किया। आहाहा! और वह भी रस का त्याग

करे, तब कहते हैं कि इसे दो रस चलते हैं, यह दो रस बनाओ। इसे चलते हैं, वह बनावे न! अर र!

प्रभु का मारग बहु शूरों का, यह कायर का काम नहीं। आहाहा! यहाँ नामर्द का काम नहीं है। यह आ गया था। पुण्य-परिणाम में रुकनेवाले नामर्द हैं, क्लीब है। आहाहा! यह अपने पहले आ गया है। कौन सी गाथा है? १५४, १५४ (गाथा में) आया है। *'नपुंसकता के कारण' 'दुरंत कर्मचक्र को पार करने की नपुंसकता के कारण...'* आहाहा! (जिसने) भगवान के स्मरण और विकल्प को जरा भी स्पर्श नहीं किया, आहाहा!

एक ओर कहा कि द्रव्य अपने गुण-पर्याय को चुम्बन करता है। वह तो परद्रव्य से भिन्न करके (कहा)। पश्चात् जब स्वद्रव्य में भिन्न, अपने द्रव्य के पवित्र को चुम्बन करता है, अपवित्र को वह चुम्बन नहीं करता और स्पर्श नहीं करता। वह अध्धर जैसे पानी के दल में तेल की बूँद ऊपर-ऊपर रहती है, पानी के दल में तिल के तेल की बूँद अन्दर नहीं जाती; इसी प्रकार भगवान आनन्द का सागर प्रभु है, उसमें ये पुण्य के परिणाम तेल जैसे (हैं, वे) अन्दर नहीं जाते। वे ऊपर-ऊपर रहेंगे। आहाहा! वह इसका स्वभाव नहीं है। आहाहा! ऐसा स्वरूप कठिन पड़ता है।

(यहाँ कहते हैं) **'ज्ञानस्य भवनं वृत्तं'** आत्मा के अनन्त गुण पवित्र हैं, उस पवित्र का पिण्ड प्रभु आत्मा द्रव्य, उसका होना। जो पवित्र गुण हैं, उनरूप द्रव्य का परिणमन होना। आहाहा! उसे चारित्र कहते हैं। यह चारित्र की व्याख्या! आहाहा! यह **'ज्ञानस्य भवनं'** स्वरूप का होना, वह स्वरूपाचरण है। स्वरूप का होना, वह स्वरूपाचरण है। स्वरूप जो शुद्ध चैतन्य है, उसका परिणमित होना, वह स्वरूपाचरण है। स्वरूप का आचरण है, वह चारित्र है। आहाहा! ऐसा है।

सम्प्रदाय में से तो विरोध खड़ा करे.. ऐ.. एकान्त है, यह तो एकान्त है। जा, जाकर प्रभु को कह। प्रभु को कह, यह एकान्त है, एकान्त है। आहाहा! क्या करे? लाख शास्त्र पढ़ा हो, परन्तु पढ़-पढ़कर निकाला हो वापस यह कि राग से लाभ होता है और व्यवहार से लाभ होता है। आहाहा!

यहाँ परमात्मा कहते हैं, परमात्मा ने कहा हुआ ही सन्त कहते हैं। आत्मा का

परिणमन.. भवन अर्थात् परिणमन। सत् का अनन्त गुण का जो सत्व-गुण, उनका परिणमन वह व्रत है, वह चारित्र है। आहाहा! इसलिए **'तद् एव मोक्षहेतुः' 'तद् एव मोक्षहेतुः'** एक **'तत्'** तत् का अर्थ यह किया। **'तत् तत् एव मोक्षहेतुः'** वही, वही मोक्ष का हेतु, ऐसा। बात ऐसी है। **'तत् तत् एव मोक्षहेतुः'** वही, वही मोक्ष का हेतु-कारण है। आहाहा! इसमें दो तत् ही हैं। हाँ, तत् ही हैं। दो बार तत्, तत् करके (बात की है)। वही, वही मोक्ष का कारण है। इसमें है। दो टीका है न! एक यह टीका है और एक वह टीका है- कलश टीका। दो टीका है। आहाहा! यहाँ तीन लाईन है, वहाँ तो पूरा पृष्ठ भरा है। आहाहा!

स्वरूपाचरण! व्रत, तप, दया, दान के विकल्प (होते हैं), वह पुद्गल आचरण है। आहाहा! दो भाग ही किये हैं। एक ओर पुद्गल आचरण तथा एक ओर स्वरूपाचरण। आहाहा! भगवान परिपूर्ण स्वभाव से भरपूर प्रभु का परिणमन होना, परिपूर्ण द्रव्य का परिपूर्ण रूप से परिणमन होना, परिपूर्ण परिणमन होना, वह तो मोक्ष (हुआ), परन्तु वह परिपूर्ण परिणमन (होना), वह द्रव्य का स्वभाव है। इस प्रकार यहाँ परिपूर्ण द्रव्य का परिणमन भले अधूरा है, उसे यहाँ चारित्र-मोक्ष का मार्ग कहते हैं। आहाहा!

इसलिए.. 'तद् एव मोक्षहेतुः' ज्ञान ही मोक्ष का कारण है। यह तो एकान्त 'ही' कहा। **'एव'** है न, एव। आत्मा का शुद्ध परिणमन, शुभ-अशुभभाव से रहित, शुद्धस्वभाव से शुद्ध के उपयोग का परिणमन (होना), वह एक ही मोक्ष का कारण है। उसे एक ही मोक्ष का कारण है, मोक्ष के कारण दो नहीं हैं कि व्यवहार और निश्चय.. आहाहा! ऐसा कठिन काम। धन्धा, स्त्री-पुत्र, पाप के कारण निवृत्त नहीं होता, थोड़ा समय मिले (और) घण्टे भर सुनने जाए, वहाँ वे ऐसी बातें करें कि आहा! व्रत करो और तप करो और रस त्याग करो, ऐसा करो और वैसा करो। आहाहा! पर का त्याग-ग्रहण तो आत्मा में है नहीं। त्यागग्रहण शून्य है। आहाहा! पर का त्याग और पर रजकण के ग्रहण से तो शून्य है। फिर रस का त्यागना, वह कहाँ (आया)? रस को कब ग्रहण किया था तो वह त्यागे? आहाहा! मात्र राग को पर्याय में ग्रहण किया था, वह स्वभाव का आश्रय लेकर उसे त्यागता है, ऐसे यह नाम कथन है, नाम कथन है। आहाहा! राग का त्याग करता है, वह भी नाम कथन है। परमार्थ से तो यह वस्तुस्वभाव है, वह तो रागरूप तो हुआ नहीं। फिर हुआ नहीं, उसे छोड़ा? (यह कैसे बने)? आहाहा!

मुमुक्षु : राग होवे तो भी!

पूज्य गुरुदेवश्री : वह होवे तो भी वस्तु उसरूप नहीं हुई। आहाहा! वस्तु ने तो राग का त्याग (किया), यह भी व्यवहार है। वस्तु स्वयं ज्ञानस्वभाव छोड़कर रागरूप हुई नहीं। परद्रव्यरूप तो हुई नहीं, प्रश्न ही नहीं, परन्तु रागरूप हुई नहीं। तो फिर राग का त्याग करना, वह तो नाममात्र है। आहाहा! यह तो वस्तुस्वरूप पवित्र प्रभु है, इसमें जम जाता है, स्थिर हो जाता है, बस! उसका नाम चारित्र है। इसने अचारित्र का – राग का त्याग किया, वह भी यहाँ तो उपचारमात्र है। व्यवहाररत्नत्रय का त्याग किया, यह भी उपचारमात्र कथन है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। परन्तु करे क्या?

'तद् एव मोक्षहेतुः'.. 'तद् एव' आत्मा के स्वभाव का परिणमन, शुद्ध का पवित्र परिणमन होना, वह राग की क्रिया के अभावस्वभावरूप से परिणमना, वह एक ही मोक्ष का कारण है; दूसरा कोई मोक्ष का कारण है नहीं। आहाहा!

कलश–१०७

वृत्तं कर्मस्वभावेन ज्ञानस्य भवनं न हि।
द्रव्यान्तरस्वभावत्वान्मोक्षहेतुर्न कर्म तत्।।१०७।।

श्लोकार्थ : [द्रव्यान्तरस्वभावत्वात्] कर्म अन्य द्रव्यस्वभावी (–पुद्गलस्वभावी) होने से [कर्मस्वभावेन] कर्म के स्वभाव से [ज्ञानस्य भवनं न हि वृत्तं] ज्ञान का भवन नहीं बनता; [तत्] इसलिए [कर्म मोक्षहेतुः न] कर्म मोक्ष का कारण नहीं है।।१०७।।

श्लोक - १०७ पर प्रवचन

दूसरा श्लोक

वृत्तं कर्मस्वभावेन ज्ञानस्य भवनं न हि।
द्रव्यान्तरस्वभावत्वान्मोक्षहेतुर्न कर्म तत्।।१०७।।

आहाहा! **'द्रव्यान्तरस्वभावत्वात्' कर्म अन्य द्रव्यस्वभावी (–पुद्गलस्वभावी) होने से**... आहाहा! यह व्यवहार, व्रत, तप, भक्ति, पूजा, दया और दान के भाव (होते हैं, वे) कर्म अन्य द्रव्यस्वभावी (हैं अर्थात्) यह कार्य है, वह अन्य द्रव्यस्वभावी है। चैतन्य स्वभावी वह कार्य नहीं है। आहाहा! चैतन्यस्वभाव तो विकाररूप होना, ऐसा कुछ है नहीं। आहाहा! कर्म अर्थात् पुण्य के परिणाम, दया, दान, व्रत, भक्ति आदि **अन्य द्रव्यस्वभावी..** वह तो **(–पुद्गलस्वभावी) होने से..** आहाहा!

'कर्मस्वभावेन' कर्म के स्वभाव से.. यह पुण्य के परिणाम के स्वभाव से अर्थात् कर्म के स्वभाव से। **'ज्ञानस्य भवनं न हि वृत्तं'** आत्मा का होना नहीं होता। आहाहा! **'ज्ञानस्य भवनं न हि वृत्तं'** चारित्र—ज्ञान का होना नहीं, वह चारित्र। ज्ञान का होना नहीं, वह चारित्र नहीं, ऐसा (कहना है)। आहाहा! **'ज्ञानस्य भवनं न हि वृत्तं'** वे व्रत पुद्गल के परिणाम हैं, वह ज्ञानभवन नहीं है। आहाहा! वह तो पुद्गल का स्वभाव है। आहाहा!

कर्म अन्य द्रव्यस्वभावी (–पुद्गलस्वभावी) होने से.. एक ओर भगवानस्वभावी का परिणमन तथा एक ओर कर्मस्वभावी परिणमन (अर्थात्) राग, दया, दान, व्रतादि। आहाहा! दो बातें (की हैं)। बाहर की धमाधम... पंच कल्याणक हो, इसलिए रथ जोड़े, हाथी जोड़े, हाथी (लावे) और बोली बोले, तीस-तीस लाख, पचास लाख इकट्ठे हों और (माने कि) ओहोहो! क्या धर्म हुआ! यहाँ कहते हैं कि वह धर्म नहीं है, बापू! वह तो पुद्गलस्वभावी वस्तु है। ऐसा है। आहाहा!

कर्म के स्वभाव से.. अर्थात् विकारी भाव तो कर्म का स्वभाव है; आत्मा का स्वभाव (तो) विकाररूप होना, ऐसा स्वभाव नहीं है। आहाहा! इसीलिए कर्मस्वभाव से आत्मा का **'भवनं न हि वृत्तं' ज्ञान का भवन..** चारित्र। **नहीं बनता;..** कर्म के स्वभाव से आत्मा का ऐसा चारित्र नहीं होता। आहाहा! **इसलिए.. 'कर्म मोक्षहेतुः न'** (अर्थात्) वे पुण्य के परिणाम, दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम, वे कर्म हैं। कर्म अर्थात् कार्य। वह **कर्म मोक्ष का कारण नहीं है।** आहाहा! शुभरूपी कार्य, वह मोक्ष का कारण नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : मोक्षमार्ग का तो कारण है?

पूज्य गुरुदेवश्री : बिलकुल नहीं। मोक्षमार्ग की बात ही यहाँ चलती है। मोक्षमार्ग

का कारण जरा भी नहीं है। बन्ध का मार्ग-संसार मार्ग है। ऐसा है। आहाहा!

मुमुक्षु : जयसेनाचार्यदेव की टीका में बहुत बार आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ; वह तो था, उसका ज्ञान कराया है। दूध किसमें था, दही किसमें था, उस बर्तन का-निमित्त का ज्ञान कराया है। निमित्त होता है, परन्तु उस निमित्त से अन्दर (कुछ) नहीं होता। यहाँ पहले कहा न! भावचारित्रपना सम्यग्दर्शन, अनुभवपूर्वक अन्दर जहाँ प्रगट होता है, वहाँ आगे व्रतादि के विकल्प और नग्नपना ही होता है। द्रव्यपना-द्रव्य ऐसा ही होता है। जैसा यहाँ भाव-स्वभाव शुद्धरूप परिणमित हुआ तो उसका निमित्त भी वहाँ नग्नपना और पंच महाव्रत वे ही निमित्त होते हैं, तथापि उनसे होता है - ऐसा नहीं है। आहाहा! आहाहा!

वे कहते हैं न! 'जाति वेश का भेद नहीं, कहा मार्ग जो होय' चाहे जिस जाति और चाहे जो वेश हो, ऐसा नहीं है। नग्नपना और पंच महाव्रत के परिणाम ही निमित्तरूप से, द्रव्यरूप (द्रव्यलिंगरूप से) होते हैं। त्रिकाली स्वभाव का, मोक्ष का कारणरूप जो परिणमन हुआ, वहाँ निमित्त ऐसा ही होता है, तथापि उससे मोक्ष नहीं होता तो भी निमित्त होवे तो ऐसा ही होता है। आहाहा! कोई वस्त्रसहित हो तो भी मानो मुनि हो, (ऐसा) तीन काल-तीन लोक में नहीं है।

मुमुक्षु : इस लोक में तो सब मुनि होते हैं, आचार्य होते हैं, उपाध्याय होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे आचार्य, उपाध्याय होते हैं, वह सब विकल्प। कहाँ था? कठिन काम, बापू! बहुत मुश्किल प्रभु! है तो प्रभु तेरे हित की बातें। बापू! यह देह आया। देह छूट जाएगा। भाई! यह तो अवधिवाली चीज़ है। तू तो अनादि-अनन्त है, प्रभु! यह तो अवधि की चीज़ है। अवधि है, तब तक रहेगी, (पश्चात्) चली जाएगी। आहाहा! फिर कहाँ जाएगा? प्रभु! आहाहा! यदि तेरी दृष्टि राग और पुण्य पर होगी तो, प्रभु! तू पुद्गल में जाएगा, भटकने में जाएगा। आहाहा! और जो रागरहित प्रभु आत्मा शुद्धचैतन्यघन है, ऐसी यदि दृष्टि होगी तो यहाँ से जाकर भी तू आत्मा में ही रहेगा। चाहे जहाँ अवतार हो, पश्चात् मनुष्य का या देव का, परन्तु तू वहाँ आत्मा में ही रहेगा। तू गति में नहीं जा सकेगा। निमित्तरूप से भले (गति में) हो। आहाहा! ऐसी बातें। **कर्म मोक्ष का कारण नहीं है।** यह १०७ (श्लोक पूरा) हुआ।

कलश–१०८

अब आगामी कथन का सूचक श्लोक कहते हैं:–

मोक्षहेतुतिरोधानाद्बन्धत्वात्स्वयमेव च।
मोक्षहेतुतिरोधायिभावत्वात्तन्निषिध्यते।।१०८।।

श्लोकार्थ : [मोक्षहेतुतिरोधानात्] कर्म मोक्ष के कारणों का तिरोधान करनेवाला है, और [स्वयम् एव बन्धत्वात्] वह स्वयं ही बन्धस्वरूप है [च] तथा [मोक्षहेतुतिरोधायि–भावत्वात्] मोक्ष के कारणों का तिरोधायिभावस्वरूप (तिरोधानकर्ता) है, इसलिए [तत् निषिध्यते] उसका निषेध किया गया है।।१०८।।

श्लोक - १०८ पर प्रवचन

अब आगामी कथन का सूचक श्लोक कहते हैं:–

मोक्षहेतुतिरोधानाद्बन्धत्वात्स्वयमेव च।
मोक्षहेतुतिरोधायिभावत्वात्तन्निषिध्यते।।१०८।।

आहाहा! पुण्य के परिणाम **मोक्ष के कारणों का तिरोधान करनेवाला है,..** ढाँकनेवाला घातक है। आहाहा! जो इसकी पर्याय में होते हैं, तथापि वह पर्याय उस द्रव्य के गुण से नहीं हुई है। आहाहा! वह पुद्गल अध्धर... एक ओर द्रव्य भगवान आत्मा और एक ओर पुद्गल। तो वह पुद्गलस्वभावी दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम। वह **कर्म मोक्ष के कारणों का..** घात करनेवाला है। तिरोधान अर्थात् घात करनेवाला है। आहाहा! **'स्वयम् एव बन्धत्वात्'** एक बात – घात करनेवाला है और (दूसरा) स्वयं बन्धस्वरूप है। आहाहा! ये दया, दान, व्रत, भावबन्धस्वरूप है। आहाहा! कर्म, द्रव्यबन्धस्वरूप है। भगवान शुद्धस्वभावस्वरूप है। आहाहा!

स्वयं ही बन्धस्वरूप है.. पुण्य के परिणाम शुभ दया, दान, व्रत, भक्ति स्वयं बन्धस्वरूप है। आहाहा! **और 'मोक्षहेतुतिरोधायिभावत्वात्' मोक्ष के कारणों का**

तिरोधायिभावस्वरूप... विरुद्धभावस्वरूप, ऐसा। आहाहा! वह घात करनेवाला था, पहले में आया था न! कलश (टीका) में कहा था। द्रव्यचारित्र जो दया, दान, व्रतादि जो क्रिया है, वह दुष्ट है, अनिष्ट है, घातक है। विषय कषाय के परिणाम की भाँति वह भी बन्ध का कारण है। उसमें आया था। बताया था न?

कलश टीका, १०८ (कलश) लो, यही आया! देखो! **कारण कि व्यवहारचारित्र...** (अर्थात्) ये पंच महाव्रत के परिणाम, पाँच समिति, गुप्ति आदि। व्यवहार के सब विकल्प। **होता हुआ दुष्ट है..** व्यवहारचारित्र, वह दुष्ट है। यह कलश टीका है, राजमलजी कृत है। **अनिष्ट है...** दुष्ट है, अनिष्ट है और **घातक है..** व्यवहारचारित्र; निश्चयचारित्र की अपेक्षा से दुष्ट है, अनिष्ट है और शान्ति का घातक है। आहाहा! अब यह बातें गुप्त पड़ी रही और ऊपर की सब बातें करना। दर्शनशुद्धि कैसे हो और उसका स्वभाव होवे तो उसका क्या स्वरूप कहलाये? यह बात पड़ी रही और ऊपर की सब बातें हो.. हा.., हो.. हा..! दस-दस हजार, बीस-बीस हजार लोग इकट्ठे हों, (इसलिए) प्रसन्न हों, लोकरंजन हो। आहाहा! अब ऐसे तो...

मुमुक्षु : लोकरंजन अर्थात् रागरंजन।

पूज्य गुरुदेवश्री : लोकरंजन, भावपाहुड़ में आया था। रंजन! वेश पहनकर लोकरंजन करना नहीं। ऐसे महाव्रत के वेश पहनकर लोकरंजन करना नहीं कि हम साधु हैं। भावपाहुड़ में आया था और भाई तारणस्वामी तो वहाँ कहते हैं, उनके श्लोक में तो बहुत आता है कि लोकरंजन करनेवाले निगोद में जानेवाले हैं। लोक को प्रसन्न करे। आहाहा! शुभभाव करते (करते) भी लाभ होगा... बापू! आहाहा!

मुमुक्षु : इस काल में तो शुभभाव ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : और इस काल में शुभभाव ही होता है, (ऐसा तू कहे)। अरे.. प्रभु! आत्मा नहीं? और आत्मा है तो उसकी (आत्मा की) प्रतीति और अनुभव, वह शुभभाव है? नहीं। प्रभु! प्रभु! क्या करे? बाह्य का त्याग नग्नपना देखकर बेचारे लोग मूर्च्छित हो जाते हैं।

मुमुक्षु : व्यवहारचारित्र को छोड़ना नहीं, उसकी पर्याय की ऐसी स्थिति हरो।

पूज्य गुरुदेवश्री : छोड़ने का यहाँ कहाँ प्रश्न है ? है ही नहीं न इसमें, फिर छोड़ना कहाँ है ? स्वरूप में स्थिर होता है, वह चारित्र है। पहला (शुभराग)। चारित्र नहीं है। शुभ (शुभभाव) हैं, वह भिन्न रह गया, छूट गया। छोड़ना पड़ता भी नहीं। आहाहा! राग को छोड़ना नहीं पड़ता। स्वरूप में चारित्र में रमणता में वह उत्पन्न नहीं होता, इस अपेक्षा से छोड़ा, ऐसा नाम से कहा जाता है।

यहाँ तो (कहते हैं) **विषय-कषाय की भाँति क्रियारूप चारित्र निषिद्ध है...** विषय-कषाय की भाँति (ऐसा कहा है)। आहाहा! जैसे विषय-कषाय का भाव पाप है, वैसे यह व्यवहारचारित्र भी (उसी की भाँति) निषेध करनेयोग्य है। आहाहा! दोनों निषेध है। आहाहा! उसमें पूरा १०८ बड़ा श्लोक है। राजमलजी की टीका है।

(यहाँ कहते हैं) **तिरोधायिभावस्वरूप..** है। वर्तमान भाव, विरोध भाव होने से। वह तो घातक है और यह तो स्वभाव से विरुद्ध भाव भावस्वरूप होने से **उसका निषेध किया गया है।** लो! विशेष कहेंगे..... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)